Gyanvividha, Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025 : PP-127-133

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.- 127-133
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. मेघा सिन्हा

पूर्व-शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
गया, बिहार.

Corresponding Author :

डॉ. मेघा सिन्हा

पूर्व-शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
गया, बिहार.

नीरजा माधव के उपन्यासों में 'तिब्बत-समस्या'

'दुनिया की छत' के नाम से विख्यात 'तिब्बत' देश अपनी प्राकृतिक सुषमा एवं धार्मिक-सांस्कृतिक विरासत के कारण एक विशिष्ट पहचान रखता है। किसी समय में सार्वभौमिक संप्रभुतासम्पन्न राष्ट्र रहा तिब्बत चीन की विस्तारवादी नीतियों का शिकार होकर मात्र एक उपनिवेश बन रह गया। 1951 ई. में चीन एवं तिब्बत के मध्य हस्ताक्षरित सत्रह सूत्री समझौते की आड़ में इसने तिब्बत पर बलपूर्वक आधिपत्य स्थापित कर लिया – "23 मई 1951 को चीन और तिब्बत के मध्य 17 सूत्रीय समझौते पर हस्ताक्षर हुए। यह समझौता चीन की नीति के अनुसार हुआ, जिसके द्वारा तिब्बत पर चीन की संपूर्ण संप्रभुता (sovereignty) को स्वीकार करके उसे केवल सीमित स्वायत्तता देने का प्रावधान दिया गया।"[1] तत्पश्चात चीनी शासन द्वारा तिब्बत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता को विनष्ट करना आरंभ किया गया। तिब्बत के निवासियों ने चीन के इस बर्बरतापूर्ण रवैये के प्रति विद्रोह आरंभ किया, जिसका चीनी शासन द्वारा क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया। परिणामत: तिब्बतियों के धार्मिक एवं राजनीतिक गुरु दलाई लामा को अपने अठारह हजार अनुयायियों के साथ तिब्बत से विस्थापित होकर अपने पड़ोसी देश भारत, जिसे वह बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध की जन्मस्थली होने के कारण 'गुरुदेश' की संज्ञा देते हैं, में शरण लेनी पड़ी। तब से लेकर आज तक पराधीन तिब्बत के निवासी अपने ही देश में अल्पसंख्यक की भाँति रहने अथवा वहाँ से विस्थापित होकर भारत, नेपाल, भूटान, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, उत्तरी-अमेरिका आदि विश्व के अन्य देशों में शरणार्थी बनकर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हैं। चीनी आक्रान्ताओं से त्रस्त तिब्बत की भयावह एवं नारकीय स्थिति को विभिन्न देशों में उपस्थित शरणार्थी तिब्बतियों द्वारा साइबरस्पेस के माध्यम से वैश्विक स्तर पर उद्घाटित किया जा रहा है और अहिंसात्मक एवं बौद्धिक प्रतिरोध के माध्यम से विश्व के अन्य देशों का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट किया जा रहा है। साहित्यिक जगत में भी यह

समस्या स्थान पा रही है। विभिन्न देशों में निवास कर रहे तिब्बती शरणार्थी रचनाकारों के साथ-साथ भारतीय साहित्यकारों द्वारा भी अब तिब्बतियों की अकथनीय पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की जा रही हैं। इसी कड़ी में लेखिका नीरजा माधव का 'गेशे जम्पा'(2006 ई.) और 'देनपा-तिब्बत की डायरी'(2014 ई.) उपन्यास भी तिब्बत-समस्या को कथा के माध्यम से प्रस्तुत कर चीन की विस्तारवादी नीतियों का खुलासा करते हुए विश्व के अन्य देशों को इस समस्या के समाधान हेतु क्रियाशील होने की प्रेरणा देता है। लेखिका इन उपन्यासों द्वारा तिब्बत की त्रासद गाथा और उसकी नियतिचक्र के अंधकारमय पक्ष को उद्घाटित करती है।

'गेशे जम्पा' उपन्यास की कथावस्तु चीनी सेना के अत्याचारों से विवश होकर तिब्बती माता-पिता द्वारा अपने पुत्र जम्पा की रक्षा हेतु उसे बचपन में ही भारत भेज देने, भारत में उसके पलने-बढ़ने एवं शिक्षित होकर सारनाथ स्थित मठ के अध्यक्ष पद पर सुशोभित होने के साथ-साथ तिब्बत मुक्ति हेतु संघर्षशील रहने पर आधारित है। यह उपन्यास सतत वर्तमान से अतीत में विचरण कर जम्पा द्वारा तिब्बत में बीते अपने बचपन के दिनों और वहाँ की भयावह परिस्थितियों को याद किये जाने के क्रम में तिब्बत की धार्मिक-सांस्कृतिक और सहज जीवन तथा उसकी पहचान पर उठ आये संकट का गहन गम्भीर विश्लेषण करता है। वस्तुत: यह उपन्यास 'जम्पा' के माध्यम से उन तमाम निर्वासित तिब्बतियों की पीड़ा को वाणी प्रदान करता है जो अपनी मातृभूमि से दूर किसी दूसरे देश में निवास करते हुए अपने देश की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत हैं और वहाँ वापस लौटने की इच्छा सँजोये हुए हैं। चीन की सरकार द्वारा तिब्बत मुक्ति आंदोलन को कमजोर करने हेतु इसके कर्मठ सदस्यों को छल-छद्म से तिब्बत वापस बुलाकर उसकी सक्रियता पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। उन्हें नजरबंद रखा जाता है, फिर किसी-न-किसी प्रकार का आरोप लगाकर या तो जेल में बंद कर दिया जाता है अथवा मौत के घाट उतार दिया जाता है। जम्पा को भी चीनी सरकार द्वारा वापस बुलाने के लिए जेल में बंद उसके वृद्ध माता-पिता को हथियार बनाया जाता है। काशाग की सभा के अध्यक्ष इसका खुलासा करते हैं, "सबसे चिन्तनीय पक्ष यह है कि सभी देशों में हमारी गतिविधियों की खुफिया रिपोर्ट चीन को भेजी जाती है। जब भी कोई तिब्बती अपनी मुक्ति-साधना के लिए बहुत सक्रिय होता है तो उसे तिब्बत बुला लेने का कोई न कोई भावनात्मक बहाना ढूंढ लिया जाता है और वहां बुलाकर उसकी सक्रियता समाप्त करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। इस प्रकार हमारा उद्देश्य कहीं न कहीं से दुर्बल हो जाता है। एक नैतिक दबाव हम सभी के ऊपर यह होता है कि हमारे माता-पिता या सगे-सम्बन्धी वहां हैं और उन्हीं को इस्तेमाल किया जाता है हमारे सक्रिय सदस्यों को वापस बुला लेने के लिए। इस तरह हमारी भावनाओं को भी आधार बनाकर कहीं न कहीं से हमारी लड़ाई को कमजोर कर दिया जा रहा है। इस सन्दर्भ में मैं बताना चाहूंगा कि पिछले दिनों एक पत्र हमारी काशाग के पास आया है, हमारे शिक्षा मंत्री गेशे जम्पा के नाम। उनके पिताजी ने लिखा है...पत्र पढ़कर स्पष्ट हो जा रहा है कि पत्र उनसे लिखवाया गया है।"[2] जम्पा तिब्बत जाना स्वीकार करता है हालाँकि उसके तिब्बत जाने को लेकर आपत्ति दर्ज करते हुए टनचू ढोंढप की अगुवाई में तिब्बती शोध संस्थान एवं मठ के छात्र-छात्राओं, भिक्षु-भिक्षुणियों द्वारा एक प्रतीकात्मक मौन विरोध-प्रदर्शन किया जाता है लेकिन जम्पा उन्हें समझाते हुए तिब्बत जाने को इसकी मुक्ति अभियान के लिए आवश्यक मानता है, "देखिए, आपका प्यार मेरा सम्बल होगा वहां। यदि कूटनीति के द्वारा ही हमें बुलाया गया है तो भी हमें जाना चाहिए। दूर रहकर हम अपनी लड़ाई इतने दिनों से लड़ रहे हैं, पर परिणाम आते-आते रुक जा रहा है। इसलिए मुझे मत रोकिए।"[3] एक साम्राज्यवादी देश द्वारा किये जा रहे धर्म-संहार, संस्कृति-संहार एवं नर-संहार से अपनी मातृभूमि को बचाने हेतु वह सब कुछ झेलने के लिए कृत संकल्पित है। जम्पा के भारत से तिब्बत प्रस्थान करने के साथ ही 'गेशे जम्पा' उपन्यास का समापन हो जाता है। वहीं इसके कई वर्षों बाद प्रकाशित 'देनपा-तिब्बत की डायरी' उपन्यास का आरम्भ जम्पा के तिब्बत आगमन से होता है। जम्पा के तिब्बत में निवास करने की कथा के माध्यम से लेखिका ने तिब्बती जनता के कष्टमय जीवन, चीनी सरकार के क्रूर अमानवीय कृत्यों, 'विकास' के नाम पर तिब्बत की प्राकृतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में की जा रही क्षति एवं मानवाधिकारों के हनन को उद्घाटित किया है। जम्पा

तिब्बत में अपने समक्ष उपस्थित होने वाली जटिल एवं भयावह परिस्थितियों तथा उनसे उपजी संवेदनाओं को अपनी डायरी में कलमबद्ध करता है इसलिए इस उपन्यास को 'देनपा-तिब्बत की डायरी' शीर्षक से अभिहित किया गया है। चीनी जेल में बिना किसी अपराध के जबरन डाले गये तिब्बतियों के साथ सैनिकों द्वारा किये जाने वाले जघन्य अत्याचारों का हृदयविदारक वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। जेल की यातनाओं के कारण जम्पा की आमा विक्षिप्त हो चुकी हैं। आपा इसका जिक्र करते हुए कहते हैं - "तुम्हारी आमा के दिमाग खराब होने का पता हम सबको तब लगा जब एक जेल अधिकारी ने आकर बताया कि याड्छेन आज अपने जूते का सोल खा रही थी। पहले तो सबको लगा कि बहुत भूखी रही होंगी, पर बाद में इनके साथ बंद दूसरी महिला ने बताया कि अकसर ही यह दूसरों के जूते भी उठा लिया करती थीं, जिसके लिए कई बार अतिरिक्त सजा मिलती इन्हें। ठंडे पानी में कई घंटे नंगे पाँव खड़ा कर देते या फिर रात में दोनों हाथों को छत की सीलिंग से इस तरह बाँध देते कि पंजों के बल ही खड़ा रहना होता। कैसे झेले हैं इन्होंने ये सारे सितम। पागल ही हुई हैं, यही कम है। मैं तो अपनी सजा झेल ही रहा था पर इनकी सजा सुन-सुनकर कलेजा मुँह को आ जाता था बेटा। दोहरी सजा काट रहा था मैं। मैं पागल भी न हो सका।"[4] तिब्बती भिक्षुणियों एवं अन्य स्त्रियों के गुप्तांगों में रॉड डाले जाने जैसी अनेक वीभत्स घटनाओं को जेल में अंजाम दिया जाता है। चीनी प्रशासन के शक के दायरे में रहने के कारण वहाँ के किसानों को फसलों में आग लगाने के लिए उकसाने का झूठा आरोप लगाकर जम्पा को जेल में बंद कर दिया जाता है। इस उपन्यास का अंत तिब्बती मुक्ति आंदोलन के कार्यकर्ताओं के समझाने पर बंजारा तिब्बतियों की सहायता से जम्पा के अपने पिता के साथ भारत वापस लौट आने की घटना से होती है।

आधुनिकता की छाया से दूर प्रकृति के साहचर्य में सहज जीवन व्यतीत करने वाले तिब्बतवासी शांति, अहिंसा, सौहार्द, करुणा, धर्म एवं आध्यात्म के उच्चादर्शों के अनुयायी रहे हैं। चीन की अराजकतापूर्ण एवं हिंसात्मक कार्रवाइयों का विरोध भी वे अहिंसात्मक ढंग से करते हैं। अपने इन्हीं जीवनादर्शों के कारण तिब्बतियों के धर्म गुरु दलाई लामा को 1989 ई. में शांति के नोबल पुरस्कार से नवाजा गया। साथ ही वे शांति एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रवर्तक के रुप में प्रसिद्ध हुए। जबकि, चीन द्वारा अपने स्वार्थलाभ हेतु इस देश में किये जा रहे विध्वंस एवं तथाकथित विकास कार्यों को एक पिछड़े समाज को आधुनिकता एवं सुविधाओं से सम्पन्न करने की 'सांस्कृतिक क्रांति' कहकर प्रचारित किया जा रहा है। लेखिका इसे 'संहार' का नाम देते हुए इसके पीछे निहित दोहरेपन को उद्घाटित करती है, "चीनियों का दावा है कि वे एक सामंती और पिछड़े समाज को आधुनिक सुविधाएँ दे रहे हैं, उन्हें विकास के साथ जोड़ रहे हैं पर जब ऊँची-नीची पहाड़ियों की तलहटी में बसे तिब्बत के सुदूर गाँवों की यात्रा की जाए तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। अर्धनिर्मित सड़कों के किनारे मीलों तक बिजली और फोन के तार मिलते हैं पर वे तिब्बतियों के जीर्ण-शीर्ण या कच्ची ईंटों के बने घरों में न जाकर वहाँ आस-पास बसे चीनियों के घरों तक जाते हैं।"[5] अत्यधिक परिमाण में चीनी नागरिकों एवं सैनिकों के तिब्बत में निर्वासित होने के कारण तिब्बत के मूल निवासियों का जीवन और अधिक विषमतापूर्ण हो गया है। इसकी आड़ में तिब्बत की भाषा, शिक्षा, संस्कृति प्राय: सभी जीवन-संदर्भों का चीनीकरण किया जा रहा है। वहाँ के स्कूलों में तिब्बती भाषा को दूसरे स्थान पर रखकर मंदारिन को पहला स्थान प्रदान कर दिया गया है। मैडम क्याप तिब्बती बच्चों में मंदारिन भाषा का ज्ञान न होने के कारण स्कूल आने के प्रति अनिच्छा रखने की समस्या का वर्णन करती है। परिणामत: अधिकांश तिब्बती बच्चे शिक्षा से विमुख हो रहे हैं। वहाँ के सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर भी चीनी संस्कृति एवं मान्यताओं का आधिपत्य स्थापित हो चुका है। गोनपा में लोसर के कार्यक्रम में मंदारिन भाषा की अधिकता एवं माओ की प्रशंसा से संबंधित गीतों का होना इस तथ्य की पुष्टि करते हैं, "मुझे लग रहा था जैसे मैं राजनैतिक विचारधारा के इतिहास में वापस चला जा रहा हूँ। प्रोग्राम में दो को छोड़ सभी गीतों की भाषा मंदारिन थी। जो दो गीत तिब्बती भाषा में थे वे भी माओ और हुआ की प्रशंसा में ही थे। जिन तिब्बती गीतों को बचपन में मैं माँ के मुँह से सुना करता था और जिनमें प्राचीन देवी-देवताओं की प्रशंसा की गई है, उन गीतों में

देवी-देवताओं का स्थान माओ ने ले लिया है।"[6] स्पष्ट है कि चीन तिब्बतवासियों को बाल्यावस्था से ही अपना गुलाम बनाना चाहता है। वह तिब्बत के इतिहास एवं धर्मावलम्बियों के सम्बन्ध में नफरत पैदा करने वाले भ्रामक एवं विकृत खबरों को प्रचारित कर तिब्बतियों को अपने धर्म, इतिहास एवं परम्पराओं से विरक्त करने की पुरजोर कोशिश कर रहा है, जिसमें वह कुछ हद तक सफल भी हो रहा है। लामा ओंग्याल इन्हीं भ्रामक खबरों से प्रभावित हैं, "आप कभी उनके महल में जाकर उस कक्ष को अवश्य देखिए जिसमें सामंती क्या कहें, एक अंधविश्वासी और धार्मिक सरकार के अत्याचारों का प्रमाण मिलता है। मर्तबानों से कटे हुए सिर, आँखें निकालनेवाले औजार, कुछ बच्चों की सूखी खालें आज भी रखीं हुईं हैं और जिनके बारे में बताया जाता है कि वे जिंदा बच्चों के ऊपर से उतारी गई थीं। ऐसी बर्बरता धर्म के नाम पर ? और उस धर्म में आस्था ? ना, बाबा ना। इन सबको देखकर तो मेरी आस्था ही समाप्त हो गई।"[7] तिब्बत मुक्ति आंदोलन को कमजोर करने की यह चीन की सोची-समझी रणनीति है। इसने तिब्बत की धार्मिक-सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विरासत को भी नेस्तनाबूद कर दिया है, "1966-76 की सांस्कृतिक क्रांति के दौरान छह हजार से अधिक बौद्ध विहारों और धार्मिक स्थानों का संपूर्ण विनाश कर दिया गया। समये, गांदेन, सुरपू बौद्ध विहारों को ध्वस्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई। ये सब तिब्बत के महत्त्वपूर्ण बौद्ध विहार थे। बहुत से मठों के असली स्थानों का भी पता लगाना अब मुश्किल है।"[8] चीनियों द्वारा समस्त तिब्बती प्रजाति को खत्म करने के लिए नर-संहार का सहारा लिया जा रहा है। साथ ही तिब्बती युवतियों की शादी जबरन चीनियों से करवायी जा रही है। इस विवाह से उत्पन्न होने वाली कन्या को मार दिया जाता है और बालक होने पर उन्हें युवावस्था में सेना में भर्ती कर लिया जाता है। चीनी सैनिकों द्वारा तिब्बती स्त्रियों के यौन-शोषण की घटनाओं को भी अक्सर ही अंजाम दिया जाता है। तिब्बत की संस्कृति में प्रकृति के प्रति सम्मान एवं समर्पण के भाव निहित रहे हैं। साथ ही, तिब्बत की भौगोलिक दशाएं भी उन्हें प्रकृति पर निर्भरता एवं उनके संरक्षण हेतु प्रेरित करती है। यही कारण है कि चीन के आधिपत्य से पूर्व तिब्बत की धरती अद्भुत प्राकृतिक छटा बिखरने वाली थी, जहाँ अत्यधिक महत्त्व वाले बड़े-बड़े पड़े, पर्वत श्रृंखलाएं, बर्फ के पहाड़, झीलें, नदियाँ एवं प्राकृतिक संसाधनों का अपार भंडार हुआ करता था। परंतु, चीन की पूंजीवादी मानसिकता ने सब पर कुठाराघात किया। बड़े पैमाने पर वनों की कटाई, चारागाहों के विनाश, प्राकृतिक संसाधनों के असंतुलित दोहन, नाभिकीय परीक्षण आदि के कारण तिब्बत की जलवायु, पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र बुरी तरह प्रभावित हुए हैं, "जंगलों की अंधाधुंध कटाई से नदियों में गाद भरना शुरु हो गया है जो बाढ़ और उसकी विभीषिका के लिए जिम्मेदार है। तिब्बत में घातक एटमी कचरे के कारण उसकी नैसर्गिक सुंदरता समाप्त हो रही है। बहुत से दुर्लभ जीव-जंतुओं के विलुप्त होने के संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। केवल जीव-जंतु ही क्या, जनसंख्या की अदला-बदली के कारण स्वयं तिब्बती मनुष्यों की प्रजाति भी नष्ट होने के कगार पर है।"[9] पर्यटन को बढ़ावा देने हेतु चीनी सरकार द्वारा अतार्किक ढंग से तिब्बत का शहरीकरण किया जा रहा है। परिणामत: वहाँ की वनस्पति एवं जीवन-जंतु विलुप्त होते जा रहे हैं। इन सबके कारण वहाँ जलवायु असंतुलन, पर्यावरण संकट, प्रदूषण आदि की समस्या उत्पन्न हो गयी है, जिसका प्रभाव केवल तिब्बत तक ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि विश्व के अन्य देशों पर भी होगा क्योंकि तिब्बत अनेक देशों में बहने वाली नदियों का उद्गम स्थल है। विडंबना यह है कि कुछ तिब्बती लोग ही चीनी सरकार से सुविधा प्राप्त होने के कारण उनके हिमायती बने हुए हैं, जिसने परिस्थिति को और जटिल बना दिया है। लामा ओंग्याल एवं चीऊ काका जैसे पात्र इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, "मैं सोच रहा था – अगर तिब्बत के लोगों का बँटवारा हो तो दो कोटियाँ तैयार होंगी – एक आराम की जिंदगी जीने वाली कोटि और दूसरी बड़ी संख्या वाली, देश के लिए काम करने और मरनेवाली कोटि। जो उपभोगवादी बनता है उसमें सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना कम होती जाती है। चीन में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का फैलाव हो रहा है। इस फैलाव की अपनी प्रक्रिया और तर्क होता है। उपभोक्तावाद के प्रसार से समूह-समूह के बीच और व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संघर्ष की स्थिति बन जाती है।"[10] दरअसल, चीनी सरकार का समर्थन करने के पीछे तिब्बतवासियों में पद और सविधाओं को प्राप्त करने के लोभ की अपेक्षा चीनी शासन से भय

की भावना अधिक व्याप्त है। वहाँ की जनता इस बात से परिचित है कि उनके खिलाफ विद्रोह कर शांतिपूर्वक जीवन नहीं बिताया जा सकता। विद्रोह करने पर उन्हें जीवन से हाथ धोने पड़ सकते हैं अथवा अपनी जान बचाने के लिए अपने देश से निर्वासित होकर किसी अन्य देश में शरण लेनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त तिब्बत मुक्ति अभियान के समक्ष एक और समस्या अन्य देशों में निवास करने वाले पेमा जैसे तिब्बती युवाओं का देश के प्रति अपनी जिम्मेदारी को न समझना भी है। वे विस्थापित देश की सुख-सुविधाओं के बीच मौज-मस्ती में मशगूल रहते हैं। उनके लिए 'शरणार्थी' होना अभिशाप नहीं वरदान के समान है। तिब्बती युवाओं का गैर-जिम्मेदाराना रवैया अन्य देशों के नागरिकों को कहीं-न-कहीं तिब्बत समस्या के प्रति उदासीन भी बना रहा है। उनसे इस दिशा में सहयोग मिलने की उम्मीदों को क्षीण करने वाला भी साबित हो सकता है इसलिए कर्मा युवाओं को तिब्बत के अतीत और वहाँ की प्रत्येक छोटी से छोटी घटना से परिचित करवाना प्रत्येक तिब्बती परिवार की नैतिक जिम्मेदारी मानता है। इस संदर्भ में एक सुखद पहलू यह है कि कई चीनी नागरिकों के मन में अपनी सरकार के अमानवीयता व्यवहारों के प्रति असंतोष का भाव विद्यमान है। वे भी इसके प्रति अपना विरोध दर्ज करते हैं। मि. जियांग का कथन चीनवासियों की सत्ता से असहमति को प्रकट करता है, "विस्थापन की त्रासदी केवल तिब्बतियों के ही हिस्से तो नहीं है न ? हम लोगों को भी तो अपने मूल स्थान से उखाड़कर यहाँ लाकर बसाया जा रहा है ? भले ही नौकरी देने के बहाने या विकास के कार्यों में प्रतिभाग के लिए या फिर सुरक्षा के नाम पर ? आपको क्या लगता है कि हर चीनी यहाँ बसकर संतुष्ट है ? इस संसार में एक छोटी सी जिंदगी मिलती है। हर आदमी शांति और सुख के साथ अपनी जमीन से जुड़े रहकर बिता लेना चाहता है। क्या मिल रहा है हम लोगों को भी ? केवल सत्ता की प्रसारवादी लोलुपता के शिकार ही तो बन रहे हैं हम चीनी लोग ? क्यों नहीं असंतोष पनपेगा ? क्यों नहीं तिब्बतियों के प्रति सहानुभूति उमड़ेगी ? आखिर दोनों जनता का दर्द तो एक ही तरह का है।"[11] चीनी सत्ता की क्रूरताओं के खिलाफ लोकतंत्र की माँग हेतु चीनी युवाओं द्वारा भी आंदोलन किये जा रहे हैं।

नीरजा माधव एक समृद्धशाली देश के चीन के कुचक्रों का शिकार हो जाने तथा अब तक इस समस्या से मुक्ति न पा सकने के पीछे निहित कारणों को भी रेखांकित करती हैं। वे इन सबके पीछे तिब्बत के अंतर्मुखी एवं एकांतवादी व्यवहार को अहम कारण मानती हैं। दरअसल तिब्बत आरंभ से ही धार्मिक प्रवृत्ति एवं एकाकी जीवन का समर्थक रहा है। वहाँ राजनैतिक जागरूकता का अभाव रहा है। वह न तो संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हुआ और ना ही उसने अन्य देशों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये। परिणामत: आज विश्व का कोई भी देश आगे बढ़कर उसकी स्वतंत्रता के लिए प्रयास नहीं कर रहा। जम्पा भिक्षुणी दोलमा से इस विषय पर अफसोस जाहिर करते हुए कहता है, "आज पश्चाताप होता है माई कि अन्य राष्ट्रों की तरह तिब्बत ने भी अपने कूटनीतिक सम्बन्ध सभी देशों से क्यों नहीं स्थापित किए ? अलग-थलग रहना ही एक तरह से स्वतंत्र तिब्बत की नीति थी। आज उसी का कुफल हम भुगत रहे हैं। 1959 में दमन के विरोध में विश्व-भर में आंदोलन नहीं चल पाया।"[12] सभी देशों से अलग-थलग रहने की प्रवृत्ति ने तिब्बत को चीन का उपनिवेश बना दिया। तिब्बतियों के पास सैन्य-बल की कमी एवं वहाँ की भौगोलिक दशाओं को भी इस निष्क्रियता का कारण माना जा सकता है। तिब्बत की इस दिशा में रही खामियों को विश्लेषित करने के साथ ही लेखिका भारत एवं विश्व के अन्य देशों में 'तिब्बत समस्या' को लेकर पायी जाने वाली उदासीनता को भी प्रश्नांकित करती है, "एक बड़े राष्ट्र ने तिब्बत जैसे छोटे और शांतिप्रिय राष्ट्र को अनावश्यक वेदना दी है। क्या तिब्बत के लिए विश्व समाज की कोई जिम्मेदारी नहीं ? आज सब सारा विश्व भौतिकता और वैज्ञानिक विकास के नाम पर मानवता को कुरुप बनाने में लगा हुआ है वहीं तिब्बत जैसा राष्ट्र अपनी सुषमामयी रत्नगर्भा धरती माँ की गोद में बैठकर मनुष्य जाति के सर्वहित में सुख, शांति और ज्ञान के प्रकाश की कामना भगवान् अवलोकितेश्वरजी से करता रहा है। ऐसे नि:स्वार्थ अहिंसक मानव समूह पर राजनीतिक स्वार्थसिद्धि हेतु पराधीनता आरोपित करने को क्या विश्व समुदाय तटस्थ होकर देखता रहेगा ? तिब्बतियों द्वारा स्वतंत्रता की अभिलाषा क्या उनकी स्वार्थ लिप्सा है या सर्वोच्च मानवीय मूल्य स्वाधीनता को प्राप्त करने का प्राकृतिक अधिकार ?"[13] लेखिका भारतीय राजनीतिज्ञों में भी सरदार

पटेल, राममनोहर लोहिया, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि कुछेक नेताओं को छोड़कर किसी भी नेता द्वारा इस समस्या पर स्पष्ट रूप से विचार प्रस्तुत न करने के प्रति भी निराशा प्रकट करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ, मानवाधिकार आयोग जैसे विश्व की महत्त्वपूर्ण संस्थाएं, संगठन एवं अन्य देशों द्वारा इस दिशा में मौन साधे रहने के पीछे के कारणों को तलाशती हुई वह कहती हैं कि, "मेरी बुद्धि तो बस इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि पश्चिमी देशों में चीन के बाजार का लोभ है तो संभवत: भारत में चीन से अनावश्यक दुश्मनी न लेने का भाव। भारत चीन से शत्रुता लेने से कतराता है और यूरोप, अमरीका और एशिया को चीन में अपना बड़ा बाजार दीखता है। तो एक ओर लोभ है, दूसरी ओर भय – और यही दोनों मुख्य विघ्न हैं तिब्बत की मुक्ति के रास्ते में।"[14] दरअसल, वैश्वीकरण एवं मुक्त बाजार की संकल्पना ने जहाँ एक ओर सभी देशों के बीच निकटता लाई है वहीं वैश्वीकरण की नीतियों से बंधे होने के कारण उनकी स्वायतत्ता क्षीण हो चुकी है। अब प्रत्येक देश अपने लाभ-हानि का विचार करके ही अन्य देशों के साथ व्यवहार करता है। वैश्विक स्तर पर पूँजी के गठजोड़ एवं सुनियोजित घृणित राजनीति के परिणामस्वरूप कोई भी देश चीन की उभरती अर्थव्यवस्था, बाजार एवं सामरिक शक्तियों से लोहा नहीं लेना चाहता। परिणामत: सभी देश 'तिब्बत समस्या' को चीन और तिब्बत का आन्तरिक मामला कहकर चुप्पी साध लेते हैं।

लेखिका के ये दोनों उपन्यास तिब्बतियों के त्रासदीपूर्ण जीवन को ही केवल अभिव्यक्त नहीं करते बल्कि उनकी जागरुकता एवं मातृभूमि को स्वतंत्र कराने हेतु संकल्पित रहने को भी वाणी प्रदान करते हैं। जम्पा भारत से तिब्बत लौटने की सूचना चीनी दूतावास को नहीं देता है। इसे वह चीनी आधिपत्य को स्वीकार करने जैसा मानता है, "पिताजी का ल्हासा जेल से जब मुझे भारत में पत्र मिला तो काशाग की बैठक में ही मैंने तय कर लिया यहाँ आने के लिए। भारत सरकार के गृह मंत्रालय को सूचना दे दी थी कि तिब्बत क्यों जा रहा हूँ? नियमानुसार तो चीनी दूतावास को भी सूचित करना चाहिए था परन्तु ऐसा करना मुझे कभी स्वीकार न हुआ। यह तो चीनी आधिपत्य को स्वीकार करने जैसा हुआ। यही करना होता तो हम शरणार्थी होने का प्रमाणपत्र क्यों लेते ? शरणार्थी होने का तात्पर्य ही है कि हम तिब्बत पर चीनी आधिपत्य को स्वीकार नहीं करते और हमें कभी-न-कभी अपने देश तिब्बत वापस जाना ही है।"[15] तिब्बत के अन्दर चीनी शासन द्वारा मुक्ति आंदोलन को जड़ से खत्म कर देने की नीयत के बावजूद वहाँ के क्रांतिकारी गुपचुप तरीके से आंदोलन चलाते रहे हैं। जम्पा के भाई कोन्-चोग् और माग्पा, खम्पा, कर्मा, सोनम दोर्जे, जिग्मे सांग्पो, रिनजिन वांग्याल, गोनपो ताशी आदि इसके प्रमाण हैं। आमजनों द्वारा भी आये दिन चीनी शासन के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है, जिसे सेना द्वारा बर्बरतापूर्वक दबा दिया जाता है। सरकार के जबरदस्ती जमीनों के अधिग्रहण और स्थानीय लोगों को बेघर करने की नीति के विरोध में होने वाले प्रदर्शन की नेतृत्वकर्ता मोवो की चीनी सेना द्वारा गोली मार कर हत्या कर दी गई और लाश को उसके घर पहुँचा दिया गया। अपने देश की आजादी हेतु प्रत्यक्ष रूप से सबसे अधिक सक्रिय बंजारा तिब्बती हैं, जिन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर निष्क्रिय करने का प्रयास किया जा रहा है, " 'तिब्बती बंजारों को जबरदस्ती बसाने के लिए इस प्रकार की दमघोंटूँ बस्तियाँ और फ्लैट पुनर्वास के नाम पर बनाई जा रही हैं। बंजारों के आर्थिक-सामाजिक विकास और पर्यावरण के नाम पर बनाई जा रही हैं ये बस्तियाँ।'...तिब्बती मुक्ति आंदोलन और प्रदर्शनों में इन बंजारों की भूमिका सिरदर्द बनी है, इसलिए। चीन विरोधी सशस्त्र संघर्ष और छापामार प्रदर्शनों ने सत्ता के लिए मुश्किलें खड़ी कर दी हैं, इसलिए तिब्बती चुनौती को कमजोर करने के लिए इनकी जिंदगी पर अंकुश लगाया जा रहा है।"[16] लेकिन तिब्बती बंजारों की जीवटता, एकता एवं हिंसात्मक आक्रमणों के समक्ष चीनी शासन शक्तिहीन हो जाती है। इसी प्रकार अन्य देशों में निवास कर रहे शरणार्थी तिब्बतियों के वापस लौटने पर उन पर अनगिनत अंकुश लगा दिये जाते हैं। फिर भी तिब्बतवासी विद्रोह का बिगुल बजाते रहने हेतु दृढ़ संकल्पित हैं, "हम आशा के दीप फिर भी नहीं बुझने देंगे। बस एक ही दंश है जो हर क्षण उद्वेलित करता है – वहाँ हम शरणार्थी थे, यहाँ अपने ही देश में गुलाम। इन दोनों शब्दों से मुक्ति ही हमारा लक्ष्य है।"[17] इक्कसवीं सदी में तिब्बत मुक्ति हेतु इनके विरोध जताने के तरीकों जैसे- अहिंसात्मक प्रदर्शन, प्रार्थनायें, सम्मेलनों के आयोजन, वार्तालाप आदि

के अतिरिक्त एक अलग तरीका भी दृष्टिगत हो रहा है। आन्दोलनकर्ताओं द्वारा चीनी शासन की अराजकता के खिलाफ आत्मदाह जैसे भयावह कदम उठाये जाने लगे हैं, "2009 से, कुछ तिब्बतियों ने चीनी शासन के विरोध में कठोर कदम उठाए हैं। आत्मदाह, जो कि खुद को आग लगाने की गहन आध्यात्मिक बौद्ध प्रथा है, विरोध के एक कठोर और चौंकाने वाले रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। आत्मदाह के विरोध प्रदर्शन 2012 में चरम पर थे, जब 80 से ज्यादा प्रदर्शन हुए। हालाँकि ये आज भी जारी हैं। अब तक 150 से ज्यादा तिब्बती – छात्र, शिक्षक, माताएँ और यहाँ तक कि बच्चे भी – आत्मदाह कर चुके हैं।"[18] अपनी अंतहीन पीड़ा से हताश तिब्बती जन अंततः इस मार्ग को अपनाने के लिए विवश हैं।

समग्रतः नीरजा माधव के उपन्यास 'गेशे जम्पा' और 'देनपा-तिब्बत की डायरी' 'तिब्बत-समस्या' जैसे ज्वलंत मुद्दे का सारगर्भित आख्यान हैं। ये तिब्बती मनुष्य की पीड़ा, संत्रास, त्रासदी, हताश, आशा-आकांक्षा एवं संघर्षशीलता के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। लेखिका ने तिब्बती समाज के अस्तित्व एवं अस्मिता पर बलात् उपस्थित हो चुके संकटों की ओर समस्त मानव जाति का ध्यान आकर्षित करने के अपने उद्देश्य के सफल क्रियान्वयन हेतु इस उपन्यास में कथा के साथ-साथ तिब्बत के इतिहास, समाज, धर्म, संस्कृति के तथ्यात्मक सूत्रों को भी पिरोया है। इसके अंतर्गत समस्या के यथार्थ चित्रण के साथ ही इससे मुक्ति के उपायों पर भी विचार किया गया है।

सन्दर्भ सूची :

1. तिब्बती शरणार्थी : मैनपाट सेटलमेंट का एक अध्ययन – डॉ0 अनुराधा सिंह, लूलू पब्लिकेशन, यूनाइटेड स्टेट्स, 2017 ई., पृ.-56.
2. गेशे जम्पा – नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 ई., पृ.-123.
3. वही, पृ.-159.
4. देनपा तिब्बत की डायरी – नीरजा माधव, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स.-2014 ई., पृ.-97.
5. वही, पृ.- 43.
6. वही, पृ.-128.
7. वही, पृ.-47.
8. वही, पृ.-54.
9. वही.
10. वही, पृ.-167.
11. वही, पृ.-193.
12. गेशे जम्पा – नीरजा माधव, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018 ई., पृ.-32.
13. देनपा – तिब्बत की डायरी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.स.-2014 ई., पृ.-23.
14. वही, पृ. – 27.
15. वही, पृ.- 25.
16. वही, पृ.- 194.
17. वही, पृ.-55.
18. https:// freetibet.org/freedom-for-tibet/tibetan-resistance/ पर 09-10-2025 को देखा गया।

•